क्या फ़िलिस्तीनी ज़िंदगी की कोई क़ीमत नहीं ?: 49वां न्यूज़लेटर (2023)

मलक मट्टर (फ़िलिस्तीन), शुरू होने से पहले ही चुरा ली गई ज़िंदगी, 2023

प्यारे दोस्तों,

ट्राईकॉन्टिनेंटल: सामाजिक शोध संस्थान की ओर से अभिवादन।

'मानवीय (युद्ध) विराम' एक भद्दा मज़ाक़ है। भयावह हिंसा के सिलसिले को कुछ समय के लिए रोक देना कहीं से भी मानवीय नहीं हो सकता। इससे हिंसा और क़त्लेआम पर पूर्ण 'विराम' नहीं लगता बल्कि इस थोड़ी सी शांति के बाद तबाही लगातार जारी रहती है। हम अनैतिकता का नौकरशाहीकरण देख रहे हैं। महत्त्वपूर्ण अर्थों वाले पुराने शब्दों (जैसे 'मानवीय') का उपयोग नए

और खोखले ढंग से हो रहा है। इनका मूल अर्थ ख़त्म किया जा रहा है। मानवीय विराम के बाद पहली इज़राइली बमबारी का मलबा हटाए जाने से पहले ही भयानक बमबारी फिर से शुरू हो गई।

'मानवीय' शब्द के अर्थ को पश्चिम बुरी तरह से तोड़–मरोड़ चुका है। आपको 'मानवीय हस्तक्षेप' भी याद होगा; 2011 में लीबिया के विनाश के लिए इन्हीं शब्दों का इस्तेमाल किया गया था। 2003 में इराक पर अवैध अमेरिकी आक्रमण के बाद पश्चिमी सैन्य हस्तक्षेप की वैधता ख़त्म हो गई थी। यह वैधता फिर से कायम करने के लिए पश्चिम ने संयुक्त राष्ट्र पर एक सम्मेलन आयोजित करने का दबाव डाला जिसके परिणामस्वरूप एक नया सिद्धांत, सुरक्षा की जिम्मेदारी (responsibility to protect – R2P), लागू हुआ। इसका उद्देश्य था: 'यह सुनिश्चित करना कि अंतरराष्ट्रीय समुदाय नरसंहार, युद्ध अपराध, जातीय संहार और मानवता के खिलाफ अपराधों को रोकने में फिर कभी विफल न रहे'। लेकिन इस महान उद्देश्य की पूर्ति के बजाय इस सिद्धांत के लागू होने पर पश्चिम को बल उपयोग के लिए संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अध्याय VII के तहत संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की स्वीकृति मिल गई। 2011 में लीबिया पर हमला इसी सिद्धांत के तहत हुआ था। मानवतावाद की आड़ में लीबिया को नष्ट कर दिया गया और देश को स्थायी गृहयुद्ध में झोंक दिया गया। ग़ज़ा पर लगातार इज़राइली बमबारी होती रही और R2P को लेकर सुगबुगाहट तक नहीं हुई (न 2008-09 में, न 2014 में, और न ही अब)।

इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि 1948 के नक़बा (इस अरबी शब्द का मतलब है तबाही । यह फ़िलिस्तीनियों की बेदखली और विस्थापन को व्यक्त करता है) से कहीं ज़्यादा फ़िलिस्तीनी अब 7 अक्टूबर से जारी इज़राइली बमबारी के कारण विस्थापित और मारे जा चुके हैं। 'मानवीय', 'मानवतावादी' जैसे शब्दों का 1948 में कुछ मतलब रहा होगा, लेकिन अब ये खोखले हो चुके हैं।

हाना मल्लाह (इराक), कला संग्रहालय की लूट, 2003

मृतकों और विस्थापितों की संख्या लगातार बढ़ रही है। शुरुआत सौ लोगों की मौत से हुई और मौतों का आँकड़ा तेज़ी से बढ़ता हुआ अब हज़ारों में पहुँच चुका है। इराक के ख़िलाफ़ अमेरिकी हमले में लगभग दस लाख लोग मारे गए थे। इतने लोग मारे गए लेकिन उनकी कहानियाँ हम तक नहीं पहुँची। मृतकों और विस्थापितों की आँकड़े तब तक समझ नहीं आते जब तक कि उनके साथ कहानियाँ न जुड़ी हों।

इसके पीछे एक कारण यह है कि मानवता के अंतर्राष्ट्रीय विभाजन के कारण हम मानव जीवन का लेखा–जोखा भी अन्यायपूर्ण ढंग से करते हैं। क्या ग़ज़ा में मारे गए फ़िलिस्तीनियों के प्रति वही सम्मानजनक रुख अपनाया गया जैसा 7 अक्टूबर को मारे गए इज़राइलियों के लिए अपनाया गया?

क्या उनके जीवन और मृत्यु को समान रूप से मूल्यवान समझा गया? इन हमलों पर असमान प्रतिक्रिया और इस भेदभावपूर्ण रवैये पर सवाल न उठना और इसे सहजता से स्वीकार किया जाना बताता है कि मानवता का यह अंतर्राष्ट्रीय विभाजन न केवल बरकरार है बल्कि पश्चिमी नेता इसे स्वीकार भी करते हैं और बढ़ावा भी देते हैं। इसलिए वो श्वेतों के मुक़ाबले ज़्यादा अश्वेत लोगों की हत्या का समर्थन करते हैं। उनकी नज़र में श्वेत ज़िंदगियाँ ज़्यादा मायने रखती हैं।

अब्देल रहमान अल-मुज़ायेन (फिलिस्तीन), शीर्षक रहित, 2000

'मानवीय विराम' के दौरान बंधकों का आदान–प्रदान हुआ। हमास और फ़िलिस्तीन की ओर से 110 इज़राइलियों को रिहा किया गया, जबकि इज़राइल ने 240 फ़िलिस्तीनी महिलाओं और बच्चों को रिहा किया। बंधक रहे इज़राइलियों में से कई ग़ज़ा पट्टी के बाहर की औपनिवेशिक बस्तियों के निवासी थे और कुछ थाई व नेपाली मज़दूर थे, जिनकी कहानियां अब दुनिया तक पहुँच रही हैं और काफ़ी चर्चा में हैं। लेकिन इज़राइल में बंधक रहे फ़िलिस्तीनियों की कहानियों को न तो दुनिया समझ रही है और न ही उन पर ज़्यादा चर्चा हो रही है। इसी तरह इस तथ्य पर भी कोई बात नहीं हो रही कि 7 अक्टूबर के बाद इज़राइल ने फ़िलिस्तीनियों को बंधक बनाने का बड़ा अभियान चलाया, जिसके तहत लगभग 200 बच्चों सहित 3,000 से भी ज़्यादा फ़िलिस्तीनियों को हिरासत में लिया गया है। अब इज़राइली जेलों में 7 अक्टूबर से पहले की तुलना में अधिक फ़िलिस्तीनी क़ैदी हैं। युद्धविराम के पहले चार दिनों में ही इज़राइल ने लगभग उतने फ़िलिस्तीनियों को गिरफ़्तार कर लिया था, जितनों को उसने बंधकों के आदान–प्रदान में रिहा किया है।

इस बात पर भी ध्यान देने की ज़रूरत है कि इज़राइली जेलों से रिहा किए गए अधिकांश (दो–तिहाई से अधिक) फ़िलिस्तीनियों पर कभी भी किसी अपराध का आरोप नहीं लगाया गया है और उन्हें सेना की कानूनी प्रणाली के तहत 'प्रशासनिक हिरासत' में रखा गया है, जिसका अर्थ है कि उन्हें बिना किसी समय सीमा के लिए जेल में रखा गया। मानवाधिकार संगठन बी'त्सेलम के मुताबिक उन्हें 'बिना मुकदमे के [और] बिना किसी अपराध के, इस आधार पर नज़रबंद रखा गया कि वे भविष्य में कानून तोड़ने की योजना बना रहे हैं।' उनमें से कुछ अनिश्चित काल के लिए इज़राइली क़ैद प्रणाली के चक्रव्यूह में खो चुके हैं। उन्हें अदालत में पेश नहीं किया जाता, वकील नहीं मिलते, उनके ख़िलाफ़ लगे आरोप भी नहीं बताए जाते और इसलिए वे बंदी प्रत्यक्षीकरण (habeas corpus) जैसे बुनियादी अधिकार का भी प्रयोग नहीं कर पाते। इज़राइल में इस समय 7,000 से भी ज़्यादा फ़िलिस्तीनी राजनीतिक कैदी हैं, जिनमें से कई वामपंथी दलों (जैसे पॉप्युलर फ़्रंट फॉर द लिबरेशन ऑफ पैलेस्टायन और डेमक्रैटिक फ़्रंट फॉर द लिबरेशन ओफ़ पैलेस्टायन) से जुड़े हैं। इनमें से 2,000 से ज़्यादा कैदी प्रशासनिक हिरासत में हैं।

इन फ़िलिस्तीनी कैदियों में बच्चे भी शामिल हैं। ये बच्चे इज़राइली व्यवस्था में सालों तक कैद रहते हैं। ज़्यादातर मामलों में प्रशासनिक हिरासत में होने के कारण ये अपनी रिहाई के लिए पैरवी भी नहीं कर पाते। डिफेंस फॉर चिल्ड्रेन इंटरनेशनल (फ़िलिस्तीन) की रिपोर्ट है कि हर साल 500-700 बच्चों को हिरासत में लिया जाता है और 2015 में संयुक्त राष्ट्र बाल कोष (यूनिसेफ) की एक चौंकाने वाली रिपोर्ट से पता चला कि इज़राइल बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन (1990) का पूर्ण उल्लंघन कर रहा है। कन्वेंशन के अनुच्छेद 37 में कहा गया है कि 'किसी बच्चे को गिरफ़्तार करना, हिरासत में लेना या कारावास में डालना [आदि] कानून के अनुरूप ही किया जाएगा और इसका उपयोग केवल अंतिम उपाय के रूप में और न्यूनतम तथा वाजिब समय के लिए ही किया जाएगा।' लेकिन कई मामलों से पता चलता है कि इज़राइल सबसे पहले उपाय के रूप में गिरफ़्तारी का उपयोग करता है और बच्चों को लंबे समय तक बंदी बना कर रखता है।

डिफेंस फॉर चिल्ड्रन इंटरनेशनल ने 1 जनवरी 2016 से 31 दिसंबर 2022 के बीच अधिकृत वेस्ट बैंक से गिरफ़्तार किए गए 766 बाल बंदियों के शपथ पत्रों का अध्ययन किया। उनके विश्लेषण से निम्नलिखित आँकड़े सामने आए:

75% बच्चे शारीरिक हिंसा का शिकार हुए।

80% बच्चों की कपड़े उतरवाकर तलाशी ली गई।

97% बच्चों से परिवार के किसी सदस्य की उपस्थिति के बिना ही पूछताछ की गई।

66% बच्चों को अपने अधिकारों के बारे में ठीक से जानकारी नहीं थी।

55% बच्चों को हिब्रू में लिखा हुआ एक कागज दिखाया गया या उस पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया, जबकि हिब्रू एक ऐसी भाषा है जिसे ज्यादातर फ़िलिस्तीनी बच्चे नहीं समझते हैं।

59% बच्चों को रात में गिरफ्तार किया गया था।

86% बच्चों को उनकी गिरफ़्तारी का कारण नहीं बताया गया था।

58% बच्चों को गिरफ्तारी के दौरान या उसके बाद मौखिक दुर्व्यवहार, अपमान या धमकियों का शिकार होना पड़ा।

23% बच्चों को दो या उससे ज़्यादा दिनों के लिए पूछताछ के मक़सद से एकान्त कारावास में रखा गया था।

स्लीमन मंसूर (फिलिस्तीन), जेल, 1982

फ़िलिस्तीनी बच्चों पर हुई क्रूरता की हज़ारों अनकही कहानियाँ हैं। इन बच्चों में से एक है अहमद मनस्रा, जिसे 12 अक्टूबर 2015 को दो इज़राइलियों – बीस वर्षीय सुरक्षा गार्ड योसेफ बेन–शालोम और एक तेरह साल के लड़के नाओर शैलेव बेन–एज्रा, को चाकू से मारने के आरोप में अधिकृत पूर्वी येरुशलम से गिरफ़्तार किया गया था। इज़राइली अदालतों ने शुरू में अहमद को चाकू मारने का दोषी पाया, लेकिन फिर अपनी राय बदलते हुए कहा कि उसके पंद्रह साल के चचेरे भाई हसन खालिद मनस्रा, जिसकी घटनास्थल पर ही गोली मारकर हत्या कर दी गई थी, ने उन दो इज़राइलियों को चाकू मारा था। इस जुल्म में अहमद की संलिप्तता का कोई सबूत नहीं था, फिर भी उसे साढ़े नौ साल जेल की सज़ा सुनाई गई।

अहमद मनस्रा (जो अब 21 साल के हैं) अभी भी जेल में हैं। वो कई महीनों से एकांत कारावास में हैं। एमनेस्टी इंटरनेशनल की खुलूद बदावी ने सितंबर के अंत में कहा था कि अहमद को 'दो साल का अधिकांश समय एकान्त कारावास में बिताने के बाद अयालोन जेल की मानसिक स्वास्थ्य इकाई में ले जाया गया था। इज़राइली जेल सेवा ने अंतरराष्ट्रीय कानून का खुला उल्लंघन करते हुए अहमद

के एकांत कारावास को अगले छह महीने के लिए और बढ़ाने का अनुरोध किया है। 15 दिनों से ज़्यादा समय तक चलने वाला एकांत कारावास, यातना और अन्य क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार के पूर्ण निषेध की व्यवस्था का उल्लंघन करता है।

अहमद को 'चाकू हमलों' की लहर के दौरान गिरफ़्तार किया गया था। यह वो दौर था जब पहले युवा फ़िलिस्तीनियों पर चाकू लेकर इज़राइली सैन्य चौकियों पर हमला करने का आरोप लगाया जाता और फिर उन्हें गोली मार दी जाती थी। उस समय, मैंने इनमें से कई हमलों की जांच कर यह पाया था कि ये मामले पूरी तरह इज़राइली सैनिकों द्वारा लगाए गए आरोपों पर आधारित थे। उदाहरण के लिए, 17 दिसंबर 2015 को हव्वारा चौकी के पास इज़राइली सैनिकों ने पंद्रह साल के अब्दुल्ला हुसैन अहमद नसास्रा की गोली मारकर हत्या कर दी थी। प्रत्यक्षदर्शियों ने मुझे बताया कि जब लड़के को घातक रूप से गोली मारी गई तो उसके हाथ हवा में थे। उनमें से एक, नासिर ने मुझे बताया कि उस लड़के के पास कोई चाकू नहीं था, और उसने 'उन्हें [उस] लड़के को मारते हुए देखा'। एम्बुलेंस चालक कमल बदरान कबलान को शव उठाने की भी अनुमति नहीं दी गई। इज़राइली उसके शव पर अपना नियंत्रण चाहते थे। वे चाहते थे कि उसके बारे में वही कहानी कही जाए, जो वे बताएं।

दूसरी कहानी हेब्रोन में तेईस साल के अनस अल-अत्राश की है। अनस और उसका भाई इस्माइल, जेरिको में एक सप्ताह काम करके घर लौटे थे और उनकी कार फलों और सब्जियों से भरी हुई थी। एक चौकी पर उन्हें रोका गया और अनस को कार से बाहर आने को कहा गया। जब अनस बाहर निकले तो एक इज़राइली सैनिक ने उन्हें गोली मार दी। अगली सुबह, इज़राइली मीडिया ने बताया कि अनस ने इज़रायली सैनिकों को मारने की कोशिश की थी। पत्रकार बेन एहरनरिच अपनी रिपोर्ट के माध्यम से पूरा सच बाहर लाना चाहते थे। उन्होंने अनस के परिवार से बात की। अनस के परिवारवालों ने उन्हें बताया कि अनस को राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वो अकाउंटिंग की पढ़ाई कर रहा था और जल्द ही उसकी शादी होने वाली थी। इज़राइली सैनिक और खुफ़िया अधिकारी इस्माइल से पूछते रहे कि क्या उसके भाई के पास चाकू है। उसके पास कोई चाकू नहीं था। फिर भी अनस की बेरहमी से हत्या की गई। 'यह एक क्रूर देश है', एक गवाह ने एहरनरिच को बताया। 'उन्हें [इज़राइली सैनिकों को] कोई शर्म नहीं है'।

हाकिम अलकेल (यमन), पंछी की आँख नामक एक श्रृंखला से, 2013

इज़राइली कब्ज़े का तरीक़ा समझना ज़रूरी है। वो फ़िलिस्तीनियों पर तब तक दबाव डालते हैं जब तक कि हिंसा की कोई घटना न घट जाए – जैसे चाकू से हमला मान लीजिए। नहीं तो इस तरह की घटना की झूठी कहानी रची जाती है। और फिर इस घटना का इस्तेमाल औपनिवेशिक बस्तियाँ बढ़ाकर फ़िलिस्तीनियों को विस्थापित करने के लिए किया जाता है। 7 अक्टूबर के बाद की घटनाओं में भी यही तरीक़ा देखा गया है। इज़राइल ने अनस, अब्दुल्ला और अहमद जैसे लोगों तथा उनके कथित अपराधों की कहानियों का इस्तेमाल किया है फ़िलिस्तीनी घरों को उजाड़ने और अवैध इज़राइली बस्तियों का विस्तार करने के लिए, जिससे वहाँ स्थाई नक़बा की स्थिति बनी हुई है।

दस साल पहले, मेरी मुलाकात प्रोफेसर नादेरा शालौब–केवोर्कियन से हुई थी, जो येरुशलम के हिब्रू विश्वविद्यालय में पढ़ाती हैं। शालौब–केवोर्कियन ने यह अध्ययन किया है कि कैसे इज़राइली कब्ज़े के कारण फिलिस्तिनियों के रोजमर्रा जीवन में उत्पीड़ित होने का भाव घर कर गया है क्योंकि सड़कों से लेकर उनके निजी दायरे तक हिंसा फैली हुई है।

उनकी पुस्तक सिक्योरिटी थियोलॉजी, सर्विलांस, एंड द पॉलिटिक्स ऑफ फियर (2015) डर के उद्योग की एक झलक पेश करती है। यह डर फ़िलिस्तीनियों पर इज़राइली बस्तियों में रहने वालों और इज़राइली सेना द्वारा की जाने वाली रोजमर्रा की हिंसा से पैदा होता है और लगातार बढ़ता जाता है। जन्म देने और मृतकों को दफ़नाने के वक्त फ़िलिस्तीनियों के सामने आने वाली

कठिनाइयाँ भी इसी हिंसा का हिस्सा हैं। शालौब–केवोर्कियन लिखती हैं कि इतनी ज़्यादा हिंसा और अनिश्चितता के बीच फ़िलिस्तीनी महिलाएँ लगातार महसूस करती हैं कि 'उनका गला घोंटा जा रहा है, उनका दम घुट रहा या उनका मुंह बंद किया जा रहा है'। इस कारण से उनके कई बच्चे जीने की इच्छा खो देते हैं। फ़िलिस्तीन में बड़े पैमाने पर सामाजिक अवसाद फैल रहा है जिसे शल्हौब–केवोर्कियन 'सोशियोसाइड', समाज की हत्या, कहती हैं।

पचास से भी ज़्यादा सालों के कब्ज़े और युद्ध ने एक अजीब माहौल पैदा कर दिया है। एहरनरिच और शालौब–केवोर्कियन दोनों का काम है इस पागलपन को दुनिया के सामने लाना। येरूशलम में रहने वाली शालौब–केवोर्कियन ने मुझे बताया कि वह उन महिलाओं के समूह का हिस्सा हैं, जो फिलिस्तीनी बच्चों को हर दिन स्कूल ले जाती हैं, क्योंकि उनके लिए अकेले या यहां तक कि अपने परिवार वालों या जानकारों के साथ पुलिस और इज़राइली बस्तियों के निवासियों का सामना करना बहुत खतरनाक है। 'बिखावफुनी!' ('वे मुझे डराते हैं!'), एक आठ साल की लड़की, माराह ने उन्हें बताया।

बच्चे स्कूल में चित्र बनाते हैं। उनमें से एक ने एक जोकर, एक फ़िलिस्तीनी जोकर का चित्र बनाया। जब शालौब–केवोर्कियन ने उस नौ साल के बच्चे से पूछा कि फ़िलिस्तीनी जोकर क्या होता है, तो उसने बताया, 'ये एक फ़िलिस्तीनी जोकर है। फ़िलिस्तीन में जोकर रोते हैं'।

अब्दुल रहीम नागोरी (पाकिस्तान), सबरा और शतीला, 1982

फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, पाकिस्तान में 1977 के सैन्य तख्तापलट के बाद लोटस पत्रिका का संपादन करने के लिए बेरूत चले गए। वहाँ उन्होंने फ़िलिस्तीनियों की दुर्दशा और संघर्षों के बारे लिखा:

> तेरे आका ने किया एक फ़िलिस्तीन बरबाद
>
> मेरे ज़ख़्मों ने किए कितने फ़िलिस्तीन आबाद।

1982 में लेबनान पर इस्रायली हमले के दौरान फैज़ ने 'फ़िलिस्तीनी बच्चे के लिए [एक] लोरी' लिखी थी। यह कविता फ़िलिस्तीनी बच्चों के मौजूदा हालात को भी बयान करती है:

मत रो बच्चे

रो रो के अभी

तेरी अम्मी की आँख लगी है

मत रो बच्चे
कुछ ही देर पहले
तेरे अब्बा ने

अपने ग़म से रुख़्सत ली है

मत रो बच्चे

तेरा भाई

अपने ख़्वाब की तितली पीछे

दूर कहीं परदेस गया है

मत रो बच्चे

तेरी बाजी का

डोला पराए देस गया है

मत रो बच्चे

तेरे आँगन में

मुर्दा सूरज नहला के गए हैं

चंद्रमा दफ़ना के गए हैं

मत रो बच्चे

अम्मी, अब्बा, बाजी, भाई

चाँद और सूरज

तू गर रोएगा तो ये सब

और भी तुझ को रुलवाएँगे

तू मुस्काएगा तो शायद

> सारे इक दिन भेस बदल कर

> तुझ से खेलने लौट आएँगे

स्नेह–सहित

विजय।